The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 2 | February 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

जिद्दू कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन का अध्ययन

डा0 पूनम बाजपेई

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (षिक्षाषास्त्र विभाग), मेजर एस.डी. सिंह विश्वविद्यालय

पूजा यादव

(शोध छात्रा), मेजर एस.डी. सिंह विश्वविद्यालय

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.18919198

प्रस्तावना– जे0 कृष्णमूर्ति ने धर्म, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान और शिक्षा को अपनी अन्तदृष्टि के माध्यम से नये आयाम दिये। छः दशकों से भी अधिक समय तक विश्व के विभिन्न भागों मे, अलग–अलग पृष्ठभूमियों से आये श्रोताओं के विशाल समूह कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व तथा वचनों की ओर आकर्षित होते रहे, पर वे किसी के गुरू नही थे। अपने शब्दों मे, वे तो बस एक दर्पण थें जिसमे इंसान खुद को देख सकता है। वे किसी विशेष समूह के नही, सच्चे अर्थो मे समस्त मानवता के मित्र थे। ये विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। इनके विलक्षण व्यक्तित्व का प्रभाव है कि जॉर्ज वर्नाड शाह ने माना ''कृष्णामूर्ति जैसा सुन्दर व्यक्ति दूसरा नहीं देखा''इसी प्रकार आचार्य रजनीश ने अपने शिष्यों से कहा ''कृष्णमूर्ति एक सजग व्यक्ति है जाओ उसके चरणो में बैठो।'' कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 को आन्द्रप्रदेश के चितूर जिले में मदनपल्ली में हुआ था। इनकी माता संजीवग्या, पिता जिद्दू नारायणीय थे। आठवीं संतान होने के कारण इनका नाम कृष्णमूर्ति रखा गया। इनके गांव का नाम जिद्दू होने कारण इनका नाम जिद्दू कृष्णमूर्ति रखा गया। 1905 में इनकी माता के देहांत हाने पर पिता नारायणीय थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा श्रीमती एनीबेसेन्ट के आमन्त्रण पर मद्रास के अड्यार में स्थित थियोसोफिकल सोसायटी परिसर में रहने लगे। जिद्दू की विलक्षणता के कारण इनको आगामी विश्व शिक्षक के रूप में देखा । अतः इन्हें, उनके भाई नित्यानन्द ने 1909 में अपने संरक्षण में लिया। युवा कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में सन 1911 में ' आर्डर आफॅ द स्टार इन ईस्ट'' नामक संस्था की स्थापना अड्यार में की गयी। संगठन के सदस्य स्वंय को विश्व में '' जगतगुरू'' के आगमन हेतु तैयार करने के लिए समर्पित थे। जगतगुरू की भावी भूमिका हेतु प्रशिक्षण के लिए कृष्णमुर्ति व इनके भाई नित्यानन्द को इंग्लेण्ड भेजा गया। इन्हें प्रशिक्षित करने के लिए समुचित व्यवस्था की गयी ताकि ये आध्यात्मिक व पश्चिमी सभ्यता दोनो में प्राशिक्षित हो सके । ये 1920 में फ्रांस गये। वहां फ्रेंच सीखी उसके पश्चात् 1921 में श्रीमती एनीबेसेन्ट के साथ वापस अड्यार आ गये । इसी समय सार्वजनिके रूप से कृष्णमूर्ति की पहचान बनी, 1925 में इनके भाई का देहान्त हो गया। इस घटना से ये पूर्णतः रूपान्तरित हो गये। वे गुरू व सम्प्रदाय के पूर्णतः विरोधी हो गये। अतः इन्होंने

श्रीमती एनीबेसेन्ट व 3000 सदस्यों की उपस्थिति में 18 वर्ष पूर्व स्थापित संगठन '' आर्डर आफॅ द स्टार इन ईस्ट '' को भंग कर दिया तथा थियोसोफिकल सोसायटी से त्याग पत्र दे दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय कैलीफोर्निया में रहे। इसके पश्चात इन्होंने सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण किया, सार्वजनिक सभाएं, साक्षात्कार ' निजी विवेचनाओं से वाद–विवाद व लेखन कार्य किया । ये कार्य इन्होंने गुरू के रूप में नहीं मात्र सत्यानवेषी, पथ प्रदर्शक व मित्र के रूप में किये। भारत सहित इंग्लेण्ड में इन्होंने विशेष विद्यालय खोले, नवम्बर 1985 में भारत अन्तिम बार आये, 1986 ई.में अस्वस्थ हो गये, 17 फरवरी 1986 में इनका शरीर शान्त हो गया।

सम्यक् शिक्षा जे0 कृष्णमर्ति के चिन्तन का मूल बिन्दु रहा है। शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन एवं मनुष्य के समग्र प्रस्फुटन से जोड़ता हुआ कृष्णमूर्ति का यह चिन्तन वर्तमान शिक्षा प्रणाली को गम्भीर चुनौती देता हुआ कहता है '' हम शिक्षक ही यदि स्वयं की गहराई से नही समझते तथा बच्चे के साथ अपने रिश्ते को ही मौलिक रूप मे नही समझते, और उसे केवल जानकारियों से भरने एवं परीक्षाऐं पास करवाने मे लगे रहते है, तो हम कैसे नये ढंग की शिक्षा ले सकेगें ? यदि मार्गदर्शक स्वयं ही भ्रांत हो, संकीर्ण हो, राष्ट्रवादी तथा मतांध हो तो स्वाभाविक है कि उसका शिष्य भी वैसा ही होगा। इस अवस्था मे शिक्षा और भी अधिक भ्रान्ति एवं कलह का कारण बनेगी। सबसे पहले स्वयं को नये सिरे से शिक्षित करने की चिंता करना बच्चे के भविष्य के कल्याण और उसकी सुरक्षा की चिंता से कहीं अधिक जरूरी है।''

शिक्षा के रूप में कृष्णमूर्ति के अनुसार सम्यक शिक्षा के माध्यम से बालक का समग्र विकास करना चाहिए । सम्यक शिक्षा ऐसी शिक्षा जिसमें वैज्ञानिक और धार्मिकता, कला और विज्ञान होता है। समग्र विकास से तात्पर्य मनुष्य का मन व्यक्ति से समाज में आधारभूत मनौवेज्ञानिक रूपान्तरण है। इनके अनुसार 'तुम ही विश्व हो ' अतः मानव मन में सृजनात्मक क्रान्ति के द्वारा जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण उत्पन करना ही जीवन है।

शिक्षा का अर्थ – कृष्णमूर्ति ने अपनी पुस्तक 'लाइफ अहेड' से बताया है कि सम्यक शिक्षा और समग्र विकास में सीखना सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उन्होंने सीखने के अर्थ को स्प्ष्ट करते हुए कहा कि सीखने का तात्पर्य केवल जानकारी का संग्रह करना नहीं बल्कि गहरी समझ का होना है, ज्ञान उपलब्धता करना, तथ्यों को एकत्रित करना उन्हे परस्पर सम्बन्धित करना अथवा पुस्तकों और सूचनाओं के द्वारा ज्ञान संकलित करना ही शिक्षा नहीं है । यहां शिक्षा का अर्थ वास्तविक रूप से समझना है। उनका विचार है कि शिक्षा का वास्तविक अर्थ स्वंय को समझना है। उनका विचार ''स्वंय से जानने'' से मेरा आशय प्रत्येक शब्द, प्रत्येक भाव को जानना मन के क्रिया कलापों को जानना न कि किसी महान एवं विशाल को जानना । शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति स्वंय को समझे उसके लिए शिक्षाके उद्देश्य अधोलिखित है। जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण विकसित करना । बालक में रचनात्मकता 'जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना । बालकों में प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग की भावना का विकास करना । शिक्षण विधि–सीखने की क्रिया का स्पष्ट अवलोकन सम्भव है अवलोकन मात्र बाहर की वस्तुओं का सम्भव है।

सीखने की प्रक्रिया में बालक में भीतर धटित संक्रिया का भी अवलोकन होना चाहिए। यहां सभी पक्षों का अवलोकन बालक के मन की स्वतन्त्रता को समाप्त करता है । निरीक्षण बालक का विषय से सम्बन्ध स्थापित करना, संवाद, परिचर्चा ऐसी विधियां हैं जिनके माध्यम से बालक को ज्ञान व सूचना सीखने के लिए उपलब्ध होती हैं। इससे वह स्वंय प्रयास एंव स्वंय अध्ययन के लिए प्रेरित होता है। बालक में आलोचनात्मक चिन्तन की स्थिति उत्पन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए हमें बालक को स्वंय त्रुटि करने व स्वतन्त्र वातावरण में सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए ।

शिक्षा के उद्देश्य–

शारीरिक विकास– स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक है, अतः बालक का शारीरिक विकास करना शिक्षा का उद्देश्य है। जैसा कि अरस्तू ने भी कहा है कि ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।'' कृष्णमूर्ति जी कहते है कि जब बालक शारीरिक विकारों से मुक्त होगा तभी वह हर क्षण सर्वथा नवीन वस्तु की खोज करने में समर्थ हो सकेगा।

मानसिक विकास– कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को जहाँ एक ओर विभिन्न क्षेत्रों में किये गये मानव प्रयत्नों का व्यापक ज्ञान देना है, वहीं दूसरी ओर उसके मन को परम्पराओं के बोझ से मुक्त करना भी है जिससे वह अविष्कार करने, खोज करने और शोध करने में समर्थ हो सके।

सामाजिक विकास– कृष्णमूर्ति कहते है कि व्यक्ति समाज का एक अंग है। उसका विकास समाज में ही होता है। उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में रहकर ही होती है। ऐसी स्थिति में समाज को प्रत्येक व्यक्ति से सेवा प्राप्त करने का अधिकार है तथा समाज का ऋण चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य। इसलिए व्यक्ति का सामाजिक विकास करना शिक्षा का आवश्यक उद्देश्य है।

आध्यात्मिक मूल्यों का विकास– कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक में आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना है। आध्यात्मिकता के विकास से उनका तात्पर्य आध्यात्मिक चेतना के विकास से है, आत्म–ज्ञान के विकास से है, नैतिक मूल्यों के विकास से है। शिक्षा का उद्देश्य बालक मे ऐसी क्षमता पैदा करना है कि वह अपने विचारों और कार्यों का हर समय निरीक्षण करता रहे। इसकी प्राप्ति के लिए वे आन्तरिक स्वतन्त्रता, आन्तरिक शान्ति, आत्मानुशासन धैर्य एवं ज्ञान को आवश्यक मानते हैं।

सांस्कृतिक विकास– कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ऐसे मानव का निर्माण करना है जो सुसंस्कृत, सभ्य और शिष्ट हो। उनका कहना है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य मे ऐसी शक्ति एवं अन्तःचेतना का विकास करना है जिससे वह पूर्वाग्रहों और पूर्व धारणाओं के विरूद्ध दृढ़तापूर्वक खड़ा हो सके और नयी संस्कृति व नये मूल्यों का निर्माण कर सके जिससे एकीकृत मानव निर्माण हो ऐसा एकीकृत मानव जो जीवन को समग्र रूप से इस प्रकार जिए कि सम्पूर्ण संसार के मानव सुख–शान्ति से रह सके।

वैज्ञानिक बुद्धि का विकास– कृष्णमूर्ति के समय में संसार में विज्ञान एवं तकनीकी का विकास बहुत व्यापक रूप से हो रहा था। विज्ञान के नये–नये आविष्कार हो रहे थे और सभी देशों में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा पर बल दिया जा रहा था। कृष्णमूर्ति ने विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का विरोध नहीं किया क्योंकि तकनीकी से नवीनता आती है और विकास द्रुतगति से होता है। वे चाहते थे कि इसका प्रयोग मानव–कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। उनका कहना था कि शिक्षा का उद्देश्य बालक में वैज्ञानिक बुद्धि का विकास करना होना चाहिए। वैज्ञानिक बुद्धि से उनका तात्पर्य तथ्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने से था।

सृजनात्मकता का विकास– कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सृजनात्मकता का विकास करना है। सृजनात्मकता से इनका तात्पर्य शरीर, मन और आत्मा तीनों की सृजनशीलता से है। इनके अनुसार बालकों पर दूसरों के विचारों को थोपा नहीं जाना चाहिए अपितु उन्हें स्वयं निर्णय करने और कार्य करने के स्वतन्त्र अवसर दिये जाने चाहिए। इसके लिए भयमुक्त वातावरण होना आवश्यक है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्वानों, तकनीशियनों तथा व्यवसाय की खोज करने वाले लोगों को ही उत्पन्न करना नहीं है वरन ऐसे एकीकृत स्त्री और पुरुष उत्पन्न करना है जो भय से मुक्त हों क्योंकि केवल ऐसे व्यक्तियों के बीच स्थायी शान्ति सम्भव है।

संवेदनशीलता का विकास– कृष्ण जी का कहना है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को संवेदनशील बनाना है। इनके अनुसार बालकों में प्रकृति और मानवमात्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करना ही सच्ची संवेदनशीलता है। ऐसी संवेदनशीलता में घृणा, द्वेष, क्रोध और हिंसा का कोई स्थान नहीं होगा। बालक भय, प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा से मुक्त होंगे और तब दुनिया में हिंसा नहीं होगी, युद्ध नहीं होगें हथियारों का निर्माण नहीं होगा।

व्यावसायिक प्रशिक्षण– जीविकोपार्जन को भी वह शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं इसलिए शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के किसी न किसी व्यवसाय के लिए प्रशिक्षित करना आवश्यक है जो इमानदारी और कर्त्तव्यपरायणता पर आधारित हो। वे यह मानते हैं कि समाज का प्रत्येक व्यकित येन–केन प्रकारेण धन संग्रह करने में लिप्त है। लेकिन इस प्रकार से धन संग्रह करने कि व्यक्तियों के शरीर मन और हृदय कठोर हो जाते है और उनकी संवेदनशीलता मर जाती है। वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बालक को धन की महत्ता और उसकी कमियों का प्रारम्भ से ही बोध कराने का प्रयास करे, जिससे वह अपने शरीर, मन और हृदय को जटिल, खंडित और कठोर न होने दे अपितु उनके बीच एक समरूप एवं संगीतिक सामंजस्य बना रहे।

शिक्षक –जे० कृष्णमूर्ति शिक्षकों की भूमिका को समाज के परिवर्तन का प्रमुख अंग मानते है क्योंकि यदि समाज में कोई भी परिवर्तन करना है तो वह केवल शिक्षकों के माध्यम से ही संभव हो सकता है। उनके कथनानुसार–क्या शिक्षा का और शिक्षक का कार्य यह देखना नहीं है कि आप स्वतंत्रापूर्वक विकास करें ताकि आप चीजों को बदल सकें और यह न हो कि, आप भी संवेदनशून्य और जड़बुद्धि होकर एक दिन यूं ही मर जाएँ ?

जे० कृष्णमूर्ति ने अपनी पुस्तक शिक्षा संवाद में एक अच्छे अध्यापक के विषय में लिखा है एक शिक्षक के हृदय में चिन्ता है कि कैसे एक नवीन मन में एक नयी संवेदना को, वृक्षों, आकाशों, स्वर्गों झरनों के लिए एक नवीन अनुभुति को उत्पन्न किया जाये। वस्तुतः शिक्षा मात्र विषय की जानकारी नहीं बल्कि प्रकृति का रसास्वादन है। अध्यापक किसी शिक्षण विधि पर निर्भर नहीं हो, वह अपने शिष्य को पढ़े। वो बालक की जिज्ञासा का आदर करे । उसे अन्वेषण (खोज) के लिए प्रेरित करे । उसका कर्तव्य है कि बालकों को आदर्श के आवरण '' क्या होना चाहिए'' से दूर रखे। बालक पूर्व निर्मित ढांचे में नहीं गढ़ना चाहिए इससे निजता अवरूद्द होती है। बालकों में परस्पर तुलना नहीं करनी चाहिए इससे प्रतिस्पर्दा में द्वेषता उत्पन्न होती है, तुलना के बिना जीने से अखण्डता उपलब्ध होती है । बालक की उपलब्धि प्रतिवेदन अनुचित है इससे अभिभावक बालकों पर दबाव डालते हैं।

शिक्षार्थी–जे0 कृष्णमूर्ति बालक के व्यक्तित्व का आदर करते थे। वे उन पर बाहर से कोई नियम, सिद्धान्त अथवा मूल थोपने का विरोध करते थे। उन प किसी प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक पूर्वाग्रहों को थोपने का विरोध करते थे। जे0 कृष्णमूर्ति विद्यार्थियों मे ऐसी चेतना विकसित करने पर बल देते थे जो उन्हे स्वयं नियम,सिद्धान्त एवं मूल्यों का चयन करने मे सहायक हो।

उनका मानना है कि शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी वह केन्द्र बिन्दु है जिसके लिए सम्पूर्ण शिक्षा का आयोजन किया जाता है। उनके अनुसार शिक्षा बालक के लिये है न कि बालक शिक्षा के लिये। छात्र अध्यापक के समक्ष जब आता है तो उसका मस्तिष्क पूर्व भ्रान्तियों एवं विश्वासों से युक्त रहता है। वह अध्यापक से भयभीत रक्षात्मक तथा अपने परिवार एवं समाज की मान्यताओं से अनुबन्धित रहता है। ऐसे समय में शिक्षक की भूमिका छात्र को उन सभी भय और अनुबंधनों से मुक्त करने की होती है ताकि वह छात्रों को मुक्त परिवेश में व्यक्तित्व विकसित कर सकें। वह ख्याल रखें कि छात्रों में प्रतियोगिता अथवा तुलना की भावना विकसित न हो क्योंकि यह भावना शिक्षार्थियों में विभाजन उत्पन्न कर देती है। सीखने की प्रक्रिया में तुलना व मूल्याकंन का कोई स्थान नहीं है, नहीं कोई सता का स्थान है, शिक्षार्थी साथ मिलकर सीखते हैं । इससे जीवन में समग्रता आती है। अर्थात शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य स्नेह व सहयोग का सम्बन्ध होना चाहिए।

अनुशासन – जे0 कृष्णमर्ति के अनुसार ''अनुशासन व्यक्ति को सजग, संवेदनशील, तथा प्रज्ञावान बनाती है फिर उसे किसी प्रकार के वाह्य अनुशासन की आवश्यकता ही नहीं यदि व्यक्ति के अन्दर सजगता, संवेदनशीलता, प्रज्ञा है तो वह पूर्ण रूप से अनुशासित है।''

स्वतन्त्रता से मनुष्य पूर्ण विकसित होकर वास्तव में मनुष्य बनता है। अतः कृष्ण मूर्ति बालक को स्वन्त्रता देने के समर्थक हैं अनुशासन के स्थान पर व्यवस्था को उचित मानते हैं। क्योंकि अनुशासन में आज्ञा पालन है जबकि व्यवस्था में स्वतंत्रता है। यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता बिना व्यवस्था के आ ही नहीं सकती है । भय, दण्ड आधारित शिक्षा सीखने में बाधा उत्पन्न करती है। क्योंकि ये बालक की जिज्ञासा, बुद्धि, चहलकदमी पर नकरात्मक प्रभाव डालती है। शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक विकास के लिए ही नहीं अपितु मानव विकास के लिए है। अतः मनुष्य के

आनन्द को पूर्णता में देखना चाहिए । शारीरिक स्वास्थ्य व सुख भले ही आनन्द का छोटा हिसा है परन्तु महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यक है हम दण्ड व भय को छोडकर ऐसी व्यवस्था अजमाएं, जिसमें बालक वही पढे जिसमें आनन्द मिले यह आनन्द बालक के लिए उत्प्रेरक का कार्य करगा ।

अभिभावक– ''जब तक हम चाहते है कि हमारे बच्चे शक्तिशाली बने, अच्छे पदों को प्राप्त करें, अधिकाधिक सफल हों तब तक हमारे हृदय मे प्रेम नही है क्योंकि सफलता की पूजा द्वन्द्व एवं कष्ट को प्रोत्साहन देती है। अपने बच्चों से प्रेम करने का अर्थ है उनके साथ पूर्णतया संवाद मे होना, यह देखना कि उनको ऐसी शिक्षा मिल रही है या नही जो उनको संवेदनशील, प्रज्ञावान और समन्वित बनाने मे सहायक हो।''

बच्चे के पालन–पोषण के लिये प्रज्ञापूर्ण निरीक्षण तथा सावधानी की आवश्यकता है। विशेषज्ञ और उनका ज्ञान कभी माता–पिता के प्रेम का स्थान नही ले सकते लेकिन अधिकांश माता–पिता उस प्रेम को स्वयं अपनी आशंकाओं और महत्वाकांक्षाओं से भ्रष्ट कर देते है और इससे बच्चों का दृष्टिकोण भी संस्कारबद्ध एवं विकृत हो जाता है। अतः बहुत कम व्यक्ति ऐसे है जिनका सम्बन्ध प्रेम से है। हममे से अधिकांशतः प्रेम के प्रदर्शन मे ही बह जाते है।

बालक की प्रारम्भिक शिक्षा पूर्णरूपेण अभिभावकों पर निर्भर होती है। अभिभावक ही प्रथम शिक्षक होते है और इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे पहले सम्यक शिक्षा प्राप्त करें। धनी हो या निर्धन अधिकांश माता–पिता अपनी व्यक्तिगत चिन्ताओं और समस्याओं मे व्यस्त रहते है। उन्हे वर्तमान सामाजिक तथा नैतिक पतन की कोई गम्भीर चिन्ता नही होती। उनकी केवल यह चिन्ता होती है कि उनके बच्चे इस काबिल हो जाएं कि संसार मे सफलतापूर्वक जी सके।

जे0 कृष्णमूर्ति ने अभिभावक के कर्तव्यों के प्रति कहा है कि ''बालक को वास्तव में समझने की इच्छा रखने वाला अभिभावक कभी उसे किसी आदर्श के आवरण के माध्यम से नहीं देखेगा। यदि वह बालक से प्रेम करता है तो वह उसका अवलोकन करेगा, उसकी प्रवृत्तियों का, मनःस्थितियो का, उसकी विशेषताओं का अध्ययन करेगा। जब हमें बच्चे से प्रेम नहीं होता है तभी हम उसके ऊपर आदर्श आरोपित करते हैं, क्योंक तब हमारी महत्वाकांक्षाएँ उस बच्चे के माध्यम से अपने तुष्टिकरण का प्रयत्न करती हैं और उसे 'यह' अथवा 'वह' बनाना चाहती हैं। '' यदि हम बच्चे से प्रेम करते है न कि आदर्श से, तब शायद हम स्वयं को समझने में बच्चे की मदद कर सकें।

अभिभावकों को अपने बच्चों की सही शिक्षा के लिए संवेदनशील, बुद्धिमान होना चाहिए। उन्हें अपने बच्चों के शिक्षक के निरन्तर सम्पर्क में रह कर सहयोग प्रदान करना चाहिए।

विद्यालय – जे0 कृष्णमूर्ति ने विद्यालय की अनिवार्यता स्वीकार करते हुये कहा कि '' मुझे और हममें से अधिकांश लोग जो इन बातों के प्रति गम्भीर है यह महसूस होता है कि इस तरह के स्थान के द्वारा एक ऐसे परिवेश निर्मित हो, एक ऐसा स्थान हो जहां आपको प्रभावित, संस्कारित और प्रशिक्षित किये बिना ही विकसित होने का हर अवसर

मिल सके ताकि आप जब इस जगह को छोड़ कर जाएं तो प्रज्ञापूर्वक और निर्भयता से जीवन जी सकें, अन्यथा इस स्थान की कोई महत्ता नही होगी। यह भी उन्ही सड़े–गले अन्य विद्यालयों जैसा होगा, शायद उनसे यह कुछ बेहतर होगा क्योंकि सौभाग्य से यह एक सुन्दर जगह पर स्थित है, यहां के लोग अधिक सौहार्दपूर्ण है, वे आपको मारते–पीटते नही, भले ही वे अन्य तरीको से आपको प्रताड़ित करते हों। हमे एक ऐसे विद्यालय का निर्माण करना चाहिये जहां छात्रों का दमन न किया जाऐ, उन्हे बन्धन मे न रखा जाऐ तथा हमारी धारणाओं के द्वारा, हमारी मूर्खताओं और भयों के माध्यम से उनका शोषण न किया जाऐ ताकि वे जैसे–जैसे विकसित हों अपने वैयक्तिक मामलों को समझने लगें और विवेकपूर्वक जीवन का सामना करें। ऐसे विद्यालय अन्य कोई नही बनायेगा, आप, मै और शिक्षक ही इसका निर्माण करेगें। सच्ची क्रान्ति के लिये इस ताह की भावना का होना आवश्यक है यह विद्यालय हमारा है, इसका निर्माण आपको, मुझे, शिक्षकों और सभी को मिल जुल कर करना है।''

विद्यालय मात्र शैक्षिक दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं, अपितु समग्र मानव के निमार्ण के लिए श्रेष्ठ बनें । कृष्णमूर्ति अनुसार विद्यालय ''वह स्थान होना चाहिए जहां बालक मूलरूप से प्रसन्न व आनन्दित हो, उसे डराया, धमकाया नहीं जाए । वह परीक्षाओं से भयभित नहीं हो, विद्यालय ऐसा स्थान होना चाहिए जहां विधार्थी का आन्तरिक रूपान्तरण हो उन्हें ऐसी जीवन शैली सीखाई जाये जिसका महत्व व उपयोगिता समयक हो। यह आवश्यक है कि शिक्षक व विधार्थी स्वंय को आन्तरिक व मनोवैज्ञानिक रूप से सुरक्षित अनुभव करे क्योकिं तभी उनका पूरा उपयोग लिया जा सकता है। व्यक्ति से समाज है, अतः व्यक्ति में शिक्षा से ही अनुकूल परिर्वतन लाकर समाज में सकरात्मक परिर्वतन सम्भव है, शिक्षा से ही हिंसात्मक समाज के स्थान पर नवीन समाज का निर्माण किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

जे0 कृष्णमूर्ति–शिक्षा क्या है, अनुवादक विनय कुमार वैध, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली।

जे0 कृष्णमूर्ति–शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य, अनुवादक डा0 डी0एस0 वर्मा, कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इंडिया, राजघाट, वाराणसी।

पद्मनाभन कृष्णा, जे0 कृष्णमूर्ति, शिक्षाओं का अन्वेषण, भाग 2, पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी।

जे0 कृष्णमूर्ति– आमूल क्रान्ति की चुनौति, अनुवादक कुमुद रामानंद बंसल, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली।

जे0 कृष्णमूर्ति– शिक्षा संवाद राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली।

जे0 कृष्णमूर्ति के साथ शिक्षा संवाद, शिक्षा के आयाम, अनुवादक दयालशरण वर्मा, कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इंडिया, राजघाट, वाराणसी।

डॉ0 अखिला सिंह गौर, शिक्षा दर्शन, प्रकाशक आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार डॉ0 सी0एस0 शुक्ला; अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद–211006

विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक, रामपाल सिंह, इण्टरनेशनल पब्लिसिंग हाउस, मेरठ।